National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2023; 1(48): 161-164
© 2023 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. (श्रीमती) विनय सिंहल
असोसिएट प्रोफेसर ,
आर.के.एस.डी. महाविद्यालय,
कैथल

Correspondence:
डॉ. (श्रीमती) विनय सिंहल
असोसिएट प्रोफेसर ,
आर.के.एस.डी. महाविद्यालय,
कैथल

आधुनिक युग में जैन सिद्धांतों की उपयोगिता

डॉ. (श्रीमती) विनय सिंहल

शोधपत्र सार

जैन धर्म में जैन शब्द 'जिन' शब्द से आया है, जिसका अर्थ है- 'विजेता' । यह एक प्राचीन भारतीय धर्म है जो आत्म-ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा देता है। जैन धर्म, दुनिया के प्राचीनतम धर्मों में से एक है, जिसका एक समृद्ध इतिहास है और गहरे दार्शनिक उपदेश हैं। तनावपूर्ण सांसारिक स्थिति को देखते हुए सम्प्रति यही अनुभव किया जा रहा है, कि संसार शान्ति का पिपासु है। उसकी पिपासा-शान्ति अभयस्थिति में है और अभयस्थिति का मूलाधार सद्भाव व प्रेम और अहिंसा हैं। जैन धर्म में अहिंसा को धार्मिक स्वरूप प्रदान किया गया है।

भगवान महावीर ने जिन सिद्धांतों का निरूपण किया था वह किसी वर्ग विशेष या समय विशेष से संबंधित ना होकर सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक थे। जो संपूर्ण विश्व के हित के लिए थे यही कारण है कि जितने उपयोगी वे प्राचीन काल में थे उतने ही उपयोगी आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

कूट शब्द -अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य, अपरिग्रह साम्यवाद, शांति।

आधुनिक युग तनाव, टकराव, अशांति, युध्ध, दमित जीवनमूल्य, अस्थिरता, संघर्ष एवं विषमता का युग है। आधुनिक युग में जैन धर्म के सिद्धांत व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर उपयोगी हैं।

जैन धर्म, 'जिन' शब्द से आया है, जिसका अर्थ है- 'विजेता' । यह एक प्राचीन भारतीय धर्म है जो आत्म-ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा देता है। जैन धर्म, दुनिया के प्राचीनतम धर्मों में से एक है, जिसका एक समृद्ध इतिहास है और गहरे दार्शनिक उपदेश हैं।

सांसारिक स्थिति को देखते हुए सम्प्रति यही अनुभव किया जा रहा है, कि संसार शान्ति का पिपासु है। उसकी पिपासा-शान्ति अभयस्थिति में है और अभयस्थिति का मूलाधार सद्भाव व प्रेम और अहिंसा हैं। जैन धर्म में अहिंसा को धार्मिक स्वरूप प्रदान किया गया है।

भगवान महावीर ने जिन सिद्धांतों का निरूपण किया था वह किसी वर्ग विशेष या समय विशेष से संबंधित ना होकर सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक थे। जो संपूर्ण विश्व के हित के लिए थे यही कारण है कि जितने उपयोगी वे प्राचीन काल में थे उतने ही उपयोगी आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

जनहित के लिए सर्वप्रथम अत्यंत आवश्यक है कि वह हनन प्रवृत्ति का परित्याग करें, जिसके लिए मानव के अंदर सत्य, संतोष, संयम, दया , क्षमा, समन्वय और त्याग की भावना होना अत्यंत आवश्यक है। यह किसी भी समाज को सुदृढ़ करने के लिए मूल सिद्धांत हैं। जिनका पालन किए बिना विश्व की कोई भी सामाजिक प्रणाली ना तो स्वस्थ हो सकती है और ना ही पुष्ट। इसी के लिए जैन धर्म में पांच महाव्रतों का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया गया है। ये पांच महाव्रत है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय ,ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।इसके साथ-साथ मानवीय दृष्टि के उदारता को भी जैन धर्म में अनेकांतवाद या स्यादवाद की संज्ञा दी है। जो वैचारिक अहिंसा का सर्वोत्तम सिद्धांत है।

जैनधर्म में अहिंसात्मक-भावों का अंकन जीवरक्षार्थ किया गया है। जीव हितैषी होने के कारण वे सर्व-ग्राह्य हो गए हैं। अन्य धर्मों में निर्देशित अहिंसा की अपेक्षा जैनधर्म की अहिंसा में "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः" के सर्वाधिक भावनाओं का अंकन दिखाई देता है। सूर्यास्त के पश्चात् भोजन-पानादि न करना, पानी छानकर पीना आदि क्रियाएं जीवसुरक्षा-प्रधान अहिंसा धर्म की ही प्रतीक हैं।

अहिंसा प्रधान सभी धर्मों में जैन धर्म को उच्चकोटि का धर्म माना गया है। इस धर्म में जीव-हत्या की बात तो बहुत दूर है, जीव-हत्या की कल्पना को भी महापाप की संज्ञा दी गई है। अहिंसा धर्म के अनुयायी हिंसक-भाव न मन में विचारते हैं, न वचन से उचारते हैं और ना ही किसी को इस निंदनीय कम को करने की ओर प्रोत्साहित करने की आज्ञा देते हैं।जैन धर्म में अहिंसा को सर्वोच्च महत्व दिया गया है।

जैन धर्म के पांच महाव्रत हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (गैर-आसक्ति), और ब्रह्मचर्य (शुद्धता)। इन व्रतों का पालन करके, जैन अनुयायी कर्मों के बंधन से मुक्त होने की दिशा में अग्रसर होते हैं।

अत्यन्त व्यावहारिक रूप में भी यह मानना ही पड़ेगा कि हम जो कुछ कार्य करते हैं उसके पीछे हमारी एकमात्र भावनात्मक एषणा यही रहती है कि हम सुखी हों। उसी के गर्भ में यह निषेधात्मक एषणा भी रहती है कि हमें दुःख ना हो :

दुःखं न मे स्यात्, सुखमेव मे स्यात्। इति प्रवृत्तः सततं हि लोकः।।

(बुद्धचरित)

इस सत्य को आधार बनाकर ही जैन मनीषियों ने अहिंसा के व्यवहार की उपादेयता बताई है। भगवान महावीर ने सुखेच्छा की मौलिक प्राणिप्रवृत्ति को ही पुरोभाग में रखते हुए कहा था -

सब्बे जीवा वि इच्छन्ति जीविडं न मरीजिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंधा वज्जयंतिणं।।

मरणत्रास सबसे बड़ा भय है और जीवन सबसे प्रिय वस्तु होती है। भगवान महावीर ने इसी जीवन के प्रेरक मूलतत्त्व को अपनी देशना का आधार बनाकर कहा है-

सब्बे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्खडिकूला अप्पियवहा।
पियजीविणो जीविउकामा सव्वेसि जीवियं पियं ।।[1]

सभी जीव जीना चाहते हैं। यह एक ऐसी नैसर्गिक और सहज प्रवृत्ति है जिसको नकारा नहीं जा सकता है। यह एक ऐसे साधारण अनुभव की बात है जो व्यक्ति से लेकर समाज और राष्ट्र तक पर लागू है।

महावीर स्वामी ने सभी प्राणियों के प्रति संयम रखने को अहिंसा कहा है-

अहिंसा निउणा दिट्टा, सग्वभूएसु संजमो।[2]

यहां प्राणियों के प्रति संयम का अर्थ है उनके प्रति अकुशलमूलक कार्यों से बचना। इस विचार की व्याख्या व्यासभाष्य में अधिक परिच्छिन्नता से की गयी है। इसमें सभी प्रकार से सब समय प्राणिमात्र के प्रति अनिष्ट चिन्तन के अभाव को अहिंसा कहा गया है:

तत्राऽहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।[3]

अहिंसा हिंसा का विरोधी भाव है, अतः स्वयं हिंसा के स्वरूप पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक जान पड़ता है। किसी प्रकार का प्राणिपीड़न हिंसा कहलाता है । साधारण व्यवहार में प्राणिवध को हिंसा कहते हैं। यह हिंसा है अवश्य, किन्तु इतना ही भर हिंसा नहीं है साक्षात रूप से किसी भी जीवधारी को कष्ट पहुंचाना हिंसा के अंतर्गत आता है।

जैन दर्शन में अहिंसा के मूल में दया, अनुकंपा या कृपा को विशेष स्थान दिया गया है-

अनुकम्पा कृपा । यथा सर्वे एव सत्त्वाः सुखार्थिनो दुःख-
प्रहाणार्थिनश्च, ततो नैषामल्पापि पीड़ा मया कार्येति।[4]

अहिंसा के गर्भ में भी यही भावना होती है-

अहिंसा सानुकम्पा च ।[5]

अतः दया अहिंसा का ही भावात्मक पहलू है। योगभाष्य में अहिंसा को सभी महाव्रतों का आधार कहा गया है। उत्तराध्ययन वृत्ति (१-११) ने भी अहिसा को धर्म का मूल कहा है क्योंकि उसी का भावात्मक पक्ष दया का रूप है -**धर्मः..... पूर्णदयामयत्र वृत्ति-रूपत्वादहिसामूलः**। उसी अर्थ में 'धर्मरत्न प्रकरण' ने भी दया को धर्म का मूल कहा है क्योंकि अन्य सभी अनुष्ठान उसी के अनुगामी है-

मूल धम्मस्स व्या, तवणुगयं सम्वमेवा मुट्ठाणं
टी०-मूलमाद्यकारणं धर्मस्य उक्तनिरुत्कस्य वया प्राणिरक्षा।

प्रसिद्ध जैनागम भगवतीसूत्र ने दया का जो वर्णन किया है उससे भी यह स्पष्ट होता है कि अहिंसा को दया का समानार्थक माना गया है। इसमें कहा गया है कि 'जीवमात्र को कष्ट नहीं देना, शोक में नहीं डालना, रोदन एवं अश्रूपात करने का हेतु नहीं होना, ताड़न नहीं करना, भय नहीं दिखाना, अनुकम्पा के रूप हैं।[6] पारिभाषिक रूप में अहिंसा का भी स्वरूप तो यही है। पुनः 'दया, संयम, लज्जा, जुगुप्सा, कपटहीनता, तितिक्षा, अहिंसा और ह्रीं' – इन सबों को समानार्थक कहा गया है-

दया य संजमे लज्जा, दुगुंछा अच्छलणादि य।
तितिक्खा य अहिंसा य, हिरोति एगठ्ठिया पदा।।[7]

इससे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जैन विचार में अहिंसा का क्षेत्र कितना व्यापक है। इसकी इसी व्यापकता और धर्म के मूल में होने के कारण जहाँ कहीं धर्म के तत्त्वों को गिनाया गया वहाँ अहिंसा की चर्चा प्रारम्भ में ही की गयी। यह विषय वैदिक और अवैदिक

दोनों दर्शनों के प्रसंग में समान रूप से सत्य है। उदाहरण के लिए मनु की निम्नलिखित उक्ति को लें:-

हिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्म चातुर्वण्येंऽब्रवीन्मनुः॥

(मनुस्मृति-10/63)

भारतीय वाङ्मय में इस प्रचलित कथन से सभी सुपरिचित हैं कि वेदव्यास के अठारहों पुराणों में उपदेश है-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुग्याय पापाय परपीड़नम् ।।

जैन आचार-विचार का तो मूलमन्त्र अहिंसा ही है। इसलिए स्वर्ग, मोक्ष आदि की उपलब्धि में इसे सर्वप्रधान माना गया है। वस्तुतः अन्य व्रतों का उपदेश भी इसी के संरक्षण के लिए किया गया है:-

अहिंसैषा मता मुख्या स्वर्गमोक्षप्रसाधनी ।
एतत्-संरक्षणार्थं च न्याय्यं सत्यादिपालनम् ।।

(हारिभद्रीय अष्टक)

जैन विचार का मूल मंत्र अहिंसा ही है। सत्यादि पालन के नियम तो उसकी रक्षा के लिए काम करते हैं।

अहिंसाशस्यसंरक्षणे वृत्तिकल्पत्वात् सत्यादिव्रतानाम्। कहने का आशय यह है कि धर्म के और जितने व्रत, नियम आदि हैं वे सभी किसी न किसी रूप में अहिंसा के ही अंग हैं।

विश्व के बड़े-बड़े दार्शनिक साहित्यकार एवं नेता भी इससे प्रभावित हुए बिना न रहे। सर्वश्री टालस्टाय, रोम्मो रोलां एवं महात्मा गांधी आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। महात्मा गांधी ने तो हिंसात्मक सत्याग्रह से ही विश्व की महान् शक्ति अंग्रेजी सत्ता को भारत से निकल जाने के लिए विवश कर दिया ।

भगवान् महावीर ने असत्य भाषण के कारणों पर चिन्तन करते हुए कहा है- मुख्य रूप से असत्य चार कारणों से बोला जात है-क्रोध से, लोभ से, भय से और हास्य से ।' जब मन में क्रोध की आँधी चल रही हो, लोभ का बबण्डर उठ रहा हो, भय का भूत मन पर हो, और हास्य का प्रसंग हो, उस समय मानव सहज ही असत्य-भाषण करता है, क्योंकि ये विकार जीवन की पवित्रता और मानव के विवेक को नष्ट कर देते हैं, जिससे उसकी वाणी और व्यवहार में असत्य प्रस्फुटित होता है।[8] अहिंसक व्यक्ति असत्य का आचरण नहीं कर सकता।

अहिंसक व्यक्ति दूसरों के पदार्थ और अधिकारों को नहीं छीन सकता, वासनावश अनाचार की प्रवृत्ति से रुकेगा[9] ओर अधिक परिग्रह के लिए विधि-विरुद्ध कार्य न करेगा[10] वरन् उदार होकर समाज एवं राष्ट्र की सहायता करेगा।

इस प्रकार अहिंसक के आचार में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की भावना स्वयं आ जाती है। इसीलिए अहिंसा को परम धर्म कहा है तथा विश्व शान्ति का प्रमुख कारण माना है।

पांच व्रतों में जनहित के लिए अपरिग्रह का बड़ा महत्त्व है। जिसकी मूल भाव यही है कि मानव जीवन में आवश्यकता से अधिक संग्रह ना करें। जैन धर्म मानव समाज को अधिकाधिक सुखी बनाने हेतु अपरिग्रह पर बल देता है। अपरिग्रह का अर्थ है कि पदार्थ के प्रति आसक्ति का न होना । वस्तुतः ममत्व या मूच्र्छाभाव से संग्रह करना परिग्रह कहलाता है। आसक्ति के कारण ही मानव अधिकाधिक संग्रह करता है।परिग्रह को व्यक्ति सुख का साधन समझता है और उसमें आसक्त होकर वह सदा दुःखी रहता है। जबकि कामना रहित व्यक्ति ही सुखी रह सकता है। क्योंकि मानव की इच्छायें आकाश के सदृश असीम है। और पदार्थ ससीम। जैन धर्म का यह अपरिग्रहवाद समाजवाद का आधार माना है। यह सहज में ही कहा जा सकता है कि साम्यवादी या समाजवादी विचारधारा का मूल स्रोत भगवान महावीर के सिद्धांतों को कहा जा सकता है

यों तो अहिंसा का पालन करने वाला अपरिग्रह का पालन न्यूनाधिक रूप में करेगा ही। समाज से विषमता दूर करने के लिए जीवन में इसका आचरण अत्यावश्यक है।

साम्यवाद के महान् व्याख्याता कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद की परिभाषा करते हुए लिखा है कि मानव समाज में निर्धनता ए अभिशाप है। जब तक समाज में विषमता रहेगी, समाज के कुछ लोग आवश्यकता से अधिक संग्रही होते रहेंगे तब तक शांति नहीं होगी और जब तक सम्पत्ति एवं सुख-साधनों का कुछ लोगों के हाथों में एकाधिकार है तब तक विषमता रहेगी। अतः विश्व शान्ति एवं सुख समृद्धि के लिए यह एकाधिकार समाप्त होना चाहिए और अपरिग्रह की भावना का व्यापक प्रसार होना चाहिए।

मानव परिग्रह वश निजात्मभाव को भूल जाता है और परभाव में लीन हो जाता है अतः वह स्वार्थवश जन, समाज एवं राष्ट्रहित की चिन्ता नहीं करता वरन् अशान्ति के कारण जुटाता रहता है। संग्रह की भावना वश व्यक्ति झूठ बोलता है, चोरी करता है, कम तोलता है- नापता है, छलकपट करता है, धोखा देता है, षड्यन्त्र रचता है, हत्यायें करता और यहां तक कि वह भीषण युद्ध भी करता है। अतः यदि समाज से इन दोषों को दूर करना है और विषमता हटाकर समता लानी है तो परिग्रह की भावना को संयत करना आवश्यक है, इसे मर्यादित करना होगा। जैन दर्शन के अनुसार व्यक्ति को अपनी आवश्यकता से अधिक द्रव्य, धन-धान्य और भूमि आदि को समाज एवं राष्ट्र को सौंपना होगा। इसी का नाम समाजवाद है और इसी में सर्वोदय निहित है।

जैन धर्म में न केवल व्यावहारिक अहिंसा पर बल दिया गया है अपितु वैचारिक अहिंसा के लिए स्यादवाद व अनेकांतवाद का सिद्धांत विशेष महत्व रखता है।[11]

पारस्परिक विवाद समाप्त करने के लिए समन्वयकारी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। स्याद्वाद मन के तनावों को रोकता है यदि यह दृष्टि न रहे तो सभी सम्बन्धों में, चाहे वे पारिवारिक हों या सामाजिक, राष्ट्रीय हों या अन्तराष्ट्रीय, तनाव, टकराव, संघर्ष छिड़ जाते है। अतः इससे बचने के लिए तथा संतुलित जीवन-यापन करने के लिए अनेकान्त स्याद्वाद को अंगीकार करना आवश्यक है।

स्याद्वाद के महत्व को विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है। प्रो० हर्मन जेकोबी ने लिखा है- "जैन धर्म के सिद्धान्त प्राचीन शारतीय तत्त्वज्ञान और धार्मिक पद्धति अभ्यासियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस स्याद्वाद से सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है। आज का जटिल, गुटबन्दी में संघर्षशील है। प्रत्येक राष्ट्र एक-दूसरे का विश्वास खो बैठा है। सभी राष्ट्र स्वयं को शक्तिशाली मानते हैं। कब एक-दूसरे पर प्रहार कर दें कुछ पता नहीं । भौतिक उपलब्धियाँ मिली किन्तु मानव आन्तरिक रूप से भीत है। कुछ समान सम्पन्नता बाले राष्ट्र आपस में गुट बनाकर अन्य राष्ट्रों को दबाने के यत्न में है।

इस सिद्धान्त की विशेषता यह है कि जब विभिन्न पक्ष एक-दूसरे का खण्डन करते हैं जैन दर्शन इस सिद्धान्त के द्वारा यह कहकर सामंजस्य ला देता है कि यह भी सत्य है और यह भी।केवल आवश्यकता है दृष्टिकोण बदलने की और दूसरे को समझने की।

"एकस्मिन्न विरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः।
सदादि कल्पना या च सप्तभंगीति सा मता।।[12]

किसी एक पक्ष एवं एक सत्यांश के प्रति एकान्त अन्न आग्रह न रखकर उदारतापूर्वक अन्य पक्षों एवं सत्यांशों को भी सोचना-समझना और अपेक्षापूर्वक उन्हें स्वीकार करना, यही है महावीर का अनेकान्त दर्शन ।

भगवान् महावीर ने कहा- किसी एक पक्ष की सत्ता स्वीकार भले ही करो, किन्तु उसके विरोषी जैसे प्रतिभासित होने वाले पक्ष को झुठलाया नहीं चाहिए।

इस प्रकार इस सिद्धान्त ने सहिष्णुता, उदारता, सौहार्द, प्रेम को जन्म दिया और रक्तपिपासा को शान्त किया। यही कारण है कि जैन समाज सदा और सर्वत्र संघर्ष और विरोध से बची रही। इसी सिद्धान्त से उन्होंने ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय भी किया।
आचार्य कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में लिखा है :-

न वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्मादु विस्सरूवं भणियं दवियं ति णाणीहि॥

वास्तव में यह सिद्धान्त विवाद, कलह एवं संघर्ष के समय उसे शान्त करने के लिए अग्नि पर जल का कार्य करता है। विश्व के सभी विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्ध णमोकार मन्त्र में 'णमो लोए सव्वसाहूणं' कहकर लोक में विद्यमान सभी साधुओं को नमस्कार किया गया है। केवल जैन साधु को ही नहीं वरन् भाव से प्रत्येक साधु को नमस्कार है, चाहे वह कोई भी हो।

स्याद्वाद ही असहिष्णुता तथा मनमानी विचारधाराओं में परिमार्जन कर उन्हें नया रूप दे सकता है। स्याद्वाद का शिक्षण अपने प्रति ही नहीं समस्त मानव जाति के प्रति आदर अनुराग उत्पन्न कर समन्वय की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

जैन धर्म के सिद्धांत केवल धार्मिक अभ्यास तक सीमित नहीं हैं; वे करुणा और सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के गहरे दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। जैन धर्म की यह शाश्वत बुद्धिमत्ता आज भी हमें आत्मनिर्भरता, शांति, और सच्चे आत्मज्ञान की ओर मार्गदर्शन करती है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वास्तविक परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। जैन धर्म की शिक्षाएँ और भगवान महावीर का जीवन, उनकी शिक्षाएँ और उनके उपदेश, उनके सिद्धांत आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी कि उनके समय में थे। भगवान महावीर का उपदेश आज भी संपूर्ण विश्व के लिए शांति और सद्भाव की दिशा में एक मार्गदर्शक प्रकाश पुंज की तरह हैं।

संदर्भ सूची

1. आचारांग सूत्र ,1/2/3/63-64
2. दशवैकालिक, 6-8
3. व्यासभाष्य 2/30
4. धर्मसंग्रह, अधि० 2
5. प्रश्नव्याकरण टीका,1 सं.
6. भगवती सूत्र, 6-7
7. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, अ० 3
8. ३. 'सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि-से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा नेव सयं मुसं वएज्जा', दशवैकालिक, 4/12
9. मूलाचार वृत्ति 1/8
10. मूलाचार वृत्ति, 1/9
11. 'अनेकान्तात्मकार्थ कथनं स्याद्वादः', आचार्य अकलंकः लघीय-स्त्रय, 62, मधुकर मुनिः अनेकान्त दर्शन, पृ० २०
12. पंचास्तिकाय,14/30/15